National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(67): 34 -37
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

Bishwaketu Barman
Research Scholar, JRF,
Dept. of Research and Publication,
National Sanskrit University,
Tirupati, A.P.

Correspondence:
Bishwaketu Barman
Research Scholar, JRF,
Dept. of Research and Publication,
National Sanskrit University,
Tirupati, A.P.

महाकवि श्रीहर्ष के नैषधीयचरित में न्याय एवं वैशेषिक दर्शन का प्रभाव : चयनित श्लोकों के आलोक में

Bishwaketu Barman

सारांश -

महाकवि कालिदास के उत्तरवर्ती संस्कृत महाकवियों में महाकवि श्रीहर्ष का स्थान अत्यन्त विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण है। उनके द्वारा रचित बाईस सर्गों से युक्त नैषधीयचरितम् बृहत्त्रयी के अंतर्गत एक अनुपम महाकाव्य है, जो केवल अपने काव्य-सौन्दर्य, अलंकार-वैविध्य, समकालीन सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्रण तथा अङ्गीरस के रूप में शृङ्गार-रस की मनोहर अभिव्यक्ति के लिए ही प्रसिद्ध नहीं है, अपितु गम्भीर दार्शनिक चिन्तन के सफल समन्वय के कारण भी विशेष सम्मान का अधिकारी है। इस महाकाव्य में नल-दमयन्ती की कथा को आधार बनाकर कवि ने जहाँ अपनी असाधारण काव्यप्रतिभा का परिचय दिया है, वहीं न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा, बौद्ध तथा जैन आदि भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के विविध सिद्धान्तों का भी अत्यन्त कलात्मक एवं सुसङ्गत निरूपण किया है। फलतः नैषधीयचरितम् केवल एक उत्कृष्ट साहित्यिक कृति ही नहीं, बल्कि भारतीय दार्शनिक परम्परा का भी एक महत्त्वपूर्ण भण्डार है। महाकवि श्रीहर्ष स्वयं भी एक प्रख्यात दार्शनिक थे। उनके खण्डनखण्डखाद्य ग्रन्थ में न्यायदर्शन की समीक्षा के माध्यम से अद्वैत वेदान्त की स्थापना जिस विलक्षण दार्शनिक प्रतिभा के साथ की गई है, उसका स्पष्ट प्रभाव नैषधीयचरितम् के विभिन्न प्रसङ्गों में भी दृष्टिगोचर होता है। परिणामस्वरूप यह महाकाव्य साहित्यिक रसास्वादन के साथ-साथ तर्क, तत्त्वचिन्तन तथा दार्शनिक विमर्श का भी एक अद्वितीय उदाहरण बन गया है, जिसने इस महाकाव्य की गरिमा एवं महत्ता को और अधिक समुज्ज्वल बना दिया है। इसी महान् महाकाव्य-रत्नभण्डार से न्याय एवं वैशेषिक दर्शन से सम्बद्ध ज्ञानरत्नों के अन्वेषण, विश्लेषण तथा व्याख्या के उद्देश्य से प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपादन किया गया है।

कुंजी शब्द – चतुर्दशत्व, सामान्य, मन, अणुपरिमाण, परमाणु, कारण।

भूमिका –

कालिदासोत्तर युग के कवियों में जिन तीन महाकवियों का नाम समान श्रद्धा के साथ लिया जाता है, वे हैं— किरातार्जुनीयम् महाकाव्य के रचयिता भारवि, शिशुपालवध महाकाव्य के रचयिता माघ तथा नैषधीयचरित के प्रणेता महाकवि श्रीहर्ष। संस्कृत साहित्य के विशाल भण्डार में इन तीनों ग्रन्थों को सामूहिक रूप से बृहत्त्रयी कहा जाता है, जिनमें श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित एक विशिष्ट स्थान रखता है। वैदर्भी रचना-शैली के माध्यम से महाकवि ने इस महाकाव्य में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे तथा यह महाकाव्य उनके काव्यगत एवं दार्शनिक ज्ञान के अद्भुत समन्वय का परिचायक है। बाईस सर्गों से युक्त यह महाकाव्य मुख्यतः महाभारत के वनपर्व में वर्णित नल और दमयन्ती की प्रेमकथा पर आधारित है। कवि ने शृङ्गार-रस से अनुप्राणित इस कथा को

साहित्यप्रेमियों के समक्ष अत्यन्त मनोहारी रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि शृङ्गार इस महाकाव्य का अङ्गीरस है, तथापि करुण, वीर, हास्य, रौद्र आदि अन्य रसों का भी यथोचित समावेश किया गया है। महाकाव्य के अधिकांश श्लोक उपजाति तथा वंशस्थ छन्दों में रचित हैं, किन्तु वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, स्रग्धरा आदि छन्दों का भी अत्यन्त सफल एवं कलात्मक प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त वर्णन-वैभव, प्रकृति-चित्रण की मौलिकता तथा चरित्र-चित्रण की उत्कृष्टता के कारण महाकवि श्रीहर्ष ने निःसन्देह अपने पूर्ववर्ती कवियों का अतिक्रमण किया है।

किसी भी साहित्यिक कृति की प्रसिद्धि और उसके प्रभाव का अनुमान उसके उपलब्ध टीकाग्रन्थों से लगाया जा सकता है। प्रसिद्ध नैषधीयचरित समीक्षक ए. एन. जानी ने इस महाकाव्य के पैंतालीस टीकाकारों का उल्लेख किया है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह ग्रन्थ अपने समय में विद्वत्समाज में अत्यन्त चर्चित और लोकप्रिय रहा होगा। इस महाकाव्य पर लिखी गई टीकाओं में विद्याधरकृत साहित्यविद्याधरी, चण्डूपण्डितकृत दीपिका, मल्लिनाथकृत जीवातु, नारायणकृत नैषधीयप्रकाश तथा हरिदास सिद्धान्तवागीशकृत जयन्ती टीका विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अतः महाकवि श्रीहर्ष के वैदग्ध्य, प्रज्ञा और पाण्डित्य के समन्वय से सम्पन्न इस महाकाव्य की श्रेष्ठता को दृष्टिगत रखते हुए एक प्रसिद्ध उक्ति भी प्रचलित हो गई है—

"तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः ।।"[1]

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन का सामान्य परिचय –

वेदों की प्रमाणिकता को स्वीकार करने अथवा न करने के आधार पर भारतीय दर्शन को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है— आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। आस्तिक दर्शन से षड्दर्शन का बोध होता है। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा तथा वेदान्त— इन छह दर्शनों को सामूहिक रूप से षड्दर्शन कहा जाता है। नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत चार्वाक, बौद्ध तथा जैन— इन तीन दर्शनों को सम्मिलित किया जाता है। षड्दर्शनों में सांख्य और योग, न्याय और वैशेषिक तथा मीमांसा और वेदान्त को समानतन्त्र दर्शन कहा जाता है, क्योंकि इनके सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। ये सभी भारतीय दर्शन दुःख की निवृत्ति रूप मोक्ष के मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। तथापि अपने-अपने विशिष्ट सिद्धान्तों और विचारधाराओं के कारण ये दर्शन एक-दूसरे से भिन्न भी हैं। आस्तिक दर्शनों में न्याय और वैशेषिक ऐसे दो महत्त्वपूर्ण दर्शन हैं, जिनका भारतीय दार्शनिक परम्परा में विशिष्ट स्थान है।

नैषधीयचरित के आलोक में न्याय और वैशेषिक दर्शन का सम्यक् विवेचन।

महाकवि श्रीहर्ष ने अपनी रचनाओं में बहुमुखी प्रतिभा का अद्भुत परिचय दिया है। वेद, वेदाङ्ग, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि शास्त्रों पर उनकी सहज एवं गहन पकड़ उनकी रचनाओं के अनेक स्थलों पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। वे एक साथ कवि और दार्शनिक दोनों थे। उनका ग्रन्थ 'खण्डनखण्डखाद्य' उनकी दार्शनिक प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी प्रकार काव्य-कौशल से समृद्ध 'नैषधीयचरित' महाकाव्य भी दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस महाकाव्य के सर्वत्र महाकवि श्रीहर्ष की दर्शनशास्त्र में असाधारण पारङ्गतता के प्रमाण बिखरे हुए हैं। कवि की मौलिक दार्शनिक प्रज्ञा और काव्य-प्रतिभा का स्वाभाविक समन्वय इस महाकाव्य की विशिष्टता है। न्याय, वैशेषिक तथा वेदान्त जैसे तीन आस्तिक दर्शनों के साथ-साथ चार्वाक, बौद्ध और जैन जैसे तीन नास्तिक दर्शनों के विविध सिद्धान्तों एवं विचारों का समन्वित निरूपण इस महाकाव्य के अनेक श्लोकों में हुआ है। महाकाव्य के जिन श्लोकों में न्याय तथा वैशेषिक दर्शन के तत्त्व प्रतिबिम्बित हुए हैं, वे विशेष रूप से विवेचन के योग्य हैं। उन श्लोकों में निहित न्याय और वैशेषिक दर्शन से संबंधित सिद्धान्तों एवं तथ्यों को यहाँ व्याख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

"अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः।

चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्।।"[2]

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन की दृष्टि से यह श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस श्लोक में "चतुर्दशत्वम्" पद के श्लेष के माध्यम से काव्यात्मक तथा दार्शनिक — दोनों ही दृष्टियों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत हुआ है।

एक ओर "चतुर्दशत्वम्" का श्लेष करने पर इसका अर्थ "चार दशाओं का भाव" प्राप्त होता है। । **चतस्रः दशाः यासां ताः = चतुर्दशाः , चतुर्दशा + त्वं = चतुर्दशत्व अर्थात्** "चार दशाओं का भाव" बोध होता है।

दूसरी ओर न्याय-वैशेषिक मत के अनुसार "चतुर्दशत्व" को एक जाति अथवा सामान्य के रूप में भी ग्रहण किया जा सकता है। इस दृष्टि से चतुर्दश में जो "चतुर्दशत्व" नामक सामान्य या जाति विद्यमान है, वही चौदह संख्या का बोध कराता है। किन्तु यदि चौदहों विद्याओं में से प्रत्येक की चार-चार अवस्थाएँ मान ली जाएँ, तो उनकी कुल संख्या छप्पन होनी चाहिए थी। इस प्रकार यहाँ सामान्य की दार्शनिक अवधारणा का भी संकेत मिलता है।

सामान्य वैशेषिक दर्शन के अनुसार चतुर्थ पदार्थ है। इसी प्रकार न्यायदर्शन में षोडश पदार्थों में द्वितीय पदार्थ प्रमेय के अन्तर्गत सामान्य पदार्थ का भी विवेचन किया गया है। अन्नम्भट्ट ने अपने 'तर्कसंग्रह' ग्रन्थ में सामान्य पदार्थ का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया है – ' **नित्यम् एकम् अनेकानुगतं सामान्यम्।**[3] इसी प्रकार केशव मिश्र ने भी अपने 'तर्कभाषा' ग्रन्थ में सामान्य पदार्थ का निरूपण करते

हुए कहा है – **अनुवृत्तिप्रत्यहेतुः सामान्यम् । द्रव्यादित्रयवृत्ति , नित्यमेकमनेकानुगतञ्च । तच्च द्विविधं , परमपरञ्च।**[4]

सामान्य के द्वारा अनुगत प्रतीति का ज्ञान होता है। द्रव्य, गुण और कर्म— इन तीनों में सामान्य की वृत्ति मानी जाती है। सामान्य मुख्यतः दो प्रकार का होता है— परसामान्य और अपरसामान्य। सत्ता परसामान्य है, जो द्रव्य, गुण और कर्म— इन तीनों में समान रूप से विद्यमान रहती है। इसके विपरीत अपरसामान्य द्रव्य, गुण और कर्म में पृथक-पृथक रूप से स्थित होता है। कुछ आचार्य परापरसामान्य नामक एक अन्य प्रकार के सामान्य को भी स्वीकार करते हैं।

अजस्र भूमीतटकुट्टनोत्थितैरुपास्यमानंचरणेषु रेणुभिः।
रयप्रकर्षाध्ययनार्थमागतैजनस्य चेतोभिरिवाणिमाङ्कितैः ।।"[5]

उक्त श्लोक में निरन्तर घोड़ों के खुरों द्वारा भूमि के विदीर्ण होने से उत्पन्न धूलिकणों को उनके अत्यन्त सूक्ष्म आकार के कारण मनुष्य के मन के अणुपरिमाण के समान माना गया है। इस प्रकार इस श्लोक में न्याय तथा वैशेषिक दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मन का अणुपरिमाण न्याय दर्शन द्वारा स्वीकृत है। न्याय दर्शन में द्वादश प्रमेयों के अन्तर्गत मन को सम्मिलित किया गया है। **मनस्त्वाभिसम्बन्धवान् मनः** (तर्कभाषा) ।[6] मनस्त्व जाति से सम्बन्धित होने पर उसे मन कहा जाता है। मन आत्मा से संयोग रखने वाला, अन्तःइन्द्रिय, सुख-दुःख आदि के अनुभव का साधन तथा नित्य माना गया है। संख्या आदि आठ गुण मन में विद्यमान रहते हैं।

इसी प्रकार वैशेषिक दर्शन में नव द्रव्यों में मन को नवम द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। वैशेषिक दर्शन में भी मन को अणुपरिमाण, आत्मसंयोगी, अन्तःइन्द्रिय, सुख-दुःख आदि के अनुभव का साधन तथा नित्य कहा गया है।

मन के अनुपरिमाण के सम्बन्ध में 'भाषापरिच्छेद' ग्रन्थ में कहा गया है –

" साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते।
अयौगपद्याद् ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते ।।"[7]

उक्त कारिका में "अयौगपद्याद्" पद के माध्यम से मन के अणुपरिमाण का प्रतिपादन किया गया है। मन अणुपरिमाण है। यद्यपि बाह्य इन्द्रियाँ और उनके-अपने विषय एक साथ सन्निकर्ष में रहते हैं, तथापि मन के सम्बन्ध के कारण एक समय में केवल एक ही इन्द्रिय द्वारा ज्ञान उत्पन्न होता है। इसी कारण मन को अणुपरिमाण माना गया है। यदि मन को अणुपरिमाण न मानकर विभु-परिमाण स्वीकार किया जाए, तो एक ही समय में सभी इन्द्रियों से ज्ञान उत्पन्न होने की आपत्ति उत्पन्न होगी। किन्तु वास्तव में एक ही समय में सभी इन्द्रियों का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

उपर्युक्त न्याय एवं वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित अणुपरिमाण का सिद्धान्त नैषधीयचरित महाकाव्य के एक अन्य श्लोक में भी प्रतिबिम्बित हुआ है —

यत्पथावधिरणुः परमः सा योगिधीरपि न पश्यति यस्मात् ।
बालया निज मनः परमाणौ ह्रिदरीशयहरीकृतमेनम् ।।"[8]

उक्त श्लोक में मन को अणुपरिमाण कहा गया है। नैषधीयचरित महाकाव्य में मन के अणुपरिमाण का यह सिद्धान्त न्याय दर्शन से प्रभावित है। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख टीकाकार मल्लिनाथ ने अपनी जीवातु टीका में किया है — **"अणुपरिमाणं मनः ।"**[9]

"अन्योन्यसङ्गमवशादधुना विभातां तस्यापि-
तेऽपि मनसि विकसद् विलासे ।
स्रष्टुं पुनर्मनसिजस्य तनुं प्रवृत्तमादारिव द्व्यणुककृत्परमाणु युग्मम्।।"[10]

न्याय एवं वैशेषिक दर्शन की दृष्टि से यह श्लोक भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस श्लोक में निषधराज नल के अणुपरिमाणयुक्त मन तथा विदर्भराजकन्या दमयन्ती के अणुपरिमाणयुक्त मन के संयोग से द्व्यणुक की उत्पत्ति और उसके माध्यम से क्रमशः त्र्यणुक आदि की रचना द्वारा भस्मीभूत कामदेव के शरीर के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार कवि ने न्याय एवं वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों को अत्यन्त कलात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है।

न्याय और वैशेषिक मत के अनुसार इस विषय की व्याख्या इस प्रकार है— द्व्यणुक आदि की उत्पत्ति को समझने के लिए पहले परमाणु-सिद्धान्त को जानना आवश्यक है। इसलिए न्याय दर्शन में परमाणु के विषय में कहा गया है कि —

"जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
तस्य षष्टतमो भागः परमाणुः स उच्यते।"[11]

सूर्यकिरणों में दिखाई देने वाले अत्यन्त सूक्ष्म धूलिकणों को त्र्यणुक कहा जाता है। इनके छठे भाग के बराबर जो अति सूक्ष्म सत्ता होती है, वही परमाणु कहलाती है। ऐसे दो परमाणुओं के संयोग से द्व्यणुक की उत्पत्ति होती है। **द्व्यणुकं तु द्वाभ्यांमेव परमाणुभ्यामारभ्यते।**[12] तीन द्व्यणुकों के संयोग से त्र्यणुक तथा चार त्र्यणुकों के संयोग से चतुरणुक की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार क्रमशः अन्य स्थूल पदार्थों की सृष्टि का विकास होता है।

"कलसे निजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमकारितागुणः ।
स तदुच्चकुचौ भवन् प्रभाझरचक्रभ्रममातनोति यत् ।।"[13]

उक्त श्लोक में न्याय-दर्शन द्वारा स्वीकृत घट (कलश) के निमित्त कारण का काव्यात्मक निरूपण किया गया है। न्याय-दर्शन में कारण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है— **यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च तत् कारणम् । तच्च कारणं त्रिविधम् । समवायि ,असमवायि ,निमित्तभेदात्।**[14]

जो अन्यथासिद्ध न होकर तथा कार्य के पूर्व निश्चित रूप से विद्यमान रहता है, वही कारण कहलाता है। कारण तीन प्रकार का माना गया है— समवायी, असमवायी और निमित्त। विचार की क्रमबद्धता के

लिए पहले समवायी और असमवायी कारण का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है, जिससे निमित्त कारण का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो सके।

समवायि कारण का अर्थ होता है – **यत् समवेतं कार्यं उत्पद्यते तत् समवायि कारणम्** ।[15] समवायी कारण वह होता है जिसमें समवाय सम्बन्ध के द्वारा कार्य की उत्पत्ति होती है। उदाहरणार्थ, तन्तु (धागा) पट (वस्त्र) का समवायी कारण है।

असमवायी कारण का अर्थ होता है – - **यत् समवायिकारणप्रत्यासन्नमवधृतसामर्थ्यं तद् असमवायिकारणम्** ।[16] असमवायी कारण वह है जो समवायी कारण में स्थित रहता है तथा जिसमें कार्य की उत्पत्ति कराने की सामर्थ्य निश्चित रूप से विद्यमान होती है। उदाहरण के लिए, तन्तुओं का संयोग पट का असमवायी कारण है।

निमित्त कारण का अर्थ होता है - **यन्न समवायिकारणं , नाप्यसमवायिकारणम् , अथ च कारणं तन्निमित्तकारणम्** ।[17] निमित्त कारण वह है जो न तो समवायी कारण होता है और न ही असमवायी कारण, किन्तु फिर भी कार्य की उत्पत्ति में उसकी कारणता सिद्ध होती है। वही निमित्त कारण कहलाता है। दण्ड, चक्र, चिवर आदि घटरूप कार्य के निमित्त कारण होते हैं; इसी प्रकार तुरी, बेमा आदि पटरूप कार्य के निमित्त कारण माने जाते हैं।

उपसंहार –

महाकवि श्रीहर्ष द्वारा रचित नैषधीयचरित अलंकारशास्त्रियों की दृष्टि में एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। बाईस सर्गों में विस्तृत इस महाकाव्य में महाकवि ने नल और दमयन्ती के चरित्र-चित्रण के माध्यम से अपनी असाधारण काव्य-प्रतिभा तथा गम्भीर दार्शनिक प्रज्ञा— दोनों का अद्‌भुत समन्वय प्रस्तुत किया है। एक ओर वर्णन-वैभव, प्रकृति-चित्रण की मौलिकता, चरित्र-चित्रण की कुशलता आदि गुणों के कारण यह महाकाव्य काव्यगत दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट बन गया है; वहीं दूसरी ओर भारतीय दर्शन की विचारधारा से अनुप्राणित होकर सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त आदि दार्शनिक परम्पराओं के गहन एवं विद्वत्तापूर्ण निरूपण के कारण यह महाकाव्य दार्शनिक जगत में भी अध्ययन और विमर्श का महत्त्वपूर्ण विषय बन गया है। महाकाव्य के दार्शनिक स्वरूप के निर्माण में जिन तत्त्वों का विशेष योगदान है, उनमें न्याय और वैशेषिक दर्शन के सिद्धान्त अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। इन दर्शनों के विविध मतों और अवधारणाओं का काव्य में अत्यन्त कलात्मक तथा सारगर्भित रूप से समावेश किया गया है, जिससे महाकवि श्रीहर्ष की दार्शनिक गहनता और शास्त्रीय पाण्डित्य का परिचय प्राप्त होता है। अतः अलंकारिक दृष्टि से उत्कृष्ट तथा दार्शनिक दृष्टि से समन्वित यह महाकाव्य संस्कृत साहित्य-जगत में विशेष रूप से आदृत और सम्मानित है।

References :

1. Śrīharṣa. Naiṣadhīyacarita. Chandrakalā Sanskrit and Hindi Commentaries by Acharya Shesharaja Sharma 'Regmi', Varanasi, Chaukhamba Surbharati Prakashan, 2021.
2. Śrīharṣa. Naiṣadhīyacaritam: Mahākāvyam. With the commentary Jīvātu of Mallinātha. Translated by Dr. Keshav Rao Musalgaonkar, edited by Dr. Rajeshwar Shastri Musalgaonkar, Varanasi, Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Reprint ed., 2019.
3. Annambhaṭṭa, Tarka-Saṅgraha with the Dīpikā Commentary, ed. Narayan Chandra Goswami, 3rd ed. Kolkata, Sanskrit Pustak Bhandar, 2003.
4. Bhattacharya, Vishwanath Nyayapanchanana, Bhasaparichchedah (Bodhini), Edited by Anamika Roy Chowdhury, 8th ed., Kolkata, Sanskrit Pustak Bhandar, 2021.
5. Misra, Kesava, Tarkabhāṣā, Edited by Sarbani Ganguly, executive editor Bijoya Goswami, 1st ed., Kolkata, Sanskrit Pustak Bhandar, 2005.
6. Shukla, Ram Bahadur, Naishadhiyacharitam ki Shastriya Mimansa, 1st ed., Delhi, Eastern Book Linkers, 2005.
7. Jha, Devanarayan. Naiṣadhasamīkṣā, Delhi, Nag Publishers, 2001.
8. Prasastapada , Prasastapādabhāṣyam , Translated by Brahmacārī Medhācaitanya , Part 1, Kolkata, Sanskrit Book Depot, 2021.

पाद टिप्पणी

1. प्रचलित प्रशस्तिश्लोक
2. नैषधीयचरित श्लोक 1/4
3. तर्कसंग्रह पृ.53
4. तर्कभाषा पृ.99
5. नैषधीयचरित श्लोक 1/59
6. तर्कभाषा पृ.85
7. भाषापरिच्छेद कारिका 85
8. नैषधीयचरित श्लोक 5/29
9. जीवातु टीका
10. नैषधीयचरित श्लोक 3/125
11. प्रशस्तपादभाष्य पृ.305 (प्रामाणिक विद्वज्जन)
12. तर्कभाषा पृ.82
13. नैषधीयचरित श्लोक 2/32
14. तर्कभाषा पृ.3
15. तर्कभाषा पृ.5
16. तर्कभाषा पृ.7
17. तर्कभाषा पृ.8